Jai Maa Saraswati Gyandayini
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed)
Journal home page: www.jmsjournals.in, **ISSN: 2454-8367**
Vol. 10, Issue-II, Oct. 2024

स्वामी विवेकानंद जी के वेदांतीय चिंतन में विविधताओं का समन्वयः एक विश्लेषणात्मक दार्शनिक अवलोकन (The Reconciliation of Diversities in the Vedantic Thought of Swami Vivekananda: An Analytical Philosophical Overview)

Dr. Shanker Suman Singh Bhadoria [a,*],

[a]*Guest Faculty in Philosophy, PMCOE Govt. SMS PG College, Shivpuri, Krantivir Tatya Tope University, Guna, Madhya Pradesh (India).*

KEYWORDS

स्वामी विवेकानंद, महावाक्य, वेदांत, अद्वैत वेदांत, दकियानूसी, व्यावहारिक वेदांत, आत्मा की दिव्यता, आत्मग्लानि, मानवतावाद, मानव केंद्रित, सामाजिक सेवा, भारतीय दर्शन, तत्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, आध्यात्मिक, राष्ट्रवाद, स्वच्छंदता, मोक्ष, दरिद्र नारायण, अनुभवात्मक।

ABSTRACT

भारत के महान दार्शनिकों में स्वामी विवेकानंद जी का स्थान अतिविशेष है, आध्यात्मिक पुनर्जागरण के अग्रदूत ने अपने चिंतन का मूल आधार वेदांत विशेषकर अद्वैत वेदांत को बनाया। उनके चिंतन की अभिव्यक्ति मोक्ष तथा धर्म पर आधारित न होकर मानव–जीवन, समाज तथा राष्ट्र उन्नयन पर केंद्रित थी। वेदांत मे विदित "आत्मा की पवित्रता" मनुष्य में निहित संभावनाओं को जाग्रत करने का प्रमुख स्त्रोत है जो कर्म, सेवा तथा मानवता के दर्शन की ओर प्रेरित करती है। युगांतकारी संत ने "वसुधैव कुटुंबकम" शब्द को सही मायने मे चरितार्थ किया। स्वामी जी के वेदांत संप्रेरित चिंतन का अतिमौलिक स्वरूप उनके व्यावहारिकतावाद में देखने को मिलती है जो उनके मानवतावादी और कर्मप्रधान दर्शन का आधार स्तम्भ बनती है। विवेकानंद जी का वेदान्तीय चिंतन समकालीन विश्व में सामाजिक विषमता, नैतिक संकट और सांस्कृतिक संघर्ष के निवारण हेतु वर्तमान समय मे गहन दार्शनिक प्रासंगिकता रखता है। प्रस्तुत शोध–पत्र स्वामी विवेकानंद के वेदांतीय चिंतन में अद्वैत वेदांत तथा विविधताओं की केंद्रीय परंपरा का एक सृजनात्मक, व्यावहारिक तथा वैश्विक पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है। भूमिका का विश्लेषण कर ज्ञात हुआ कि भारतीय समाज को आधुनिकता, तर्कणा, वैज्ञानिकता, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, मानवता तथा राष्ट्र–बोध का ज्ञान प्रदाय करने का श्रेय जाता है, जो वर्तमान दृष्टिकोण से मानवता, नैतिकता तथा सांस्कृतिक समन्वय के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

प्रस्तावना

19वीं शदी का भारतीय औपनिवेशिक काल सामाजिक विघटन, सांस्कृतिक हीनता से ग्रसित था। जहां पश्चिमी शिक्षा ने नवीन वैज्ञानिक चेतना को नूतन रूप में सृजित किया तो दूसरी ओर भारतीय परंपरा को दकियानूसी तथा अवैज्ञानिक घोषित करने का भी असफल प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद का आध्यात्मिक चिंतन भारतीयों की आत्मा को पुनः जीवंत करने का दार्शनिक प्रयत्न है।[1] स्वामी जी कहते हैं कि भारत के मौलिक स्वरूप की पहचान न तो राजनीतिक सत्ता से की जा सकती है और न ही भौतिकवादी मानसिकता से बल्कि भारत की आत्मा का वास तो वेदांत में निहित है।[2]

वेदांत, दर्शन की वह प्रणाली है, जो मानव जीवन की जीवंत समस्याओं का संपूर्ण समाधान प्रस्तुत करती है।

Corresponding author
****E-mail:** rajesh982624@rediffmail.com (Dr. Shanker Suman Singh Bhadoria) https://orcid.org/0009-0003-9405-9424
DOI: https://doi.org/10.53724/jmsg/v10n2.06
Received 12th August 2024; Accepted 20th Sep. 2024
Available online 30th Oct. 2024
2454-8367 /©2024 The Journal. Published by Research Inspiration (Publisher: Welfare Universe). This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

स्वामी जी ने वेदांत को नवीन दशा और दिशा देकर आधुनिक मानव समाज एवं राष्ट्र को पुनर्स्थापित किया है।

स्वामी जी के आध्यात्मिक चिंतन की धुरी मूलतः वेदांत ही है, जो न तो शास्त्रीय सिद्धांत के रूप में है और न ही सन्यास प्रधान रूप में बल्कि वह तो अनुभवात्मक वेदांत रूप में स्थापित है, जो हमें ज्ञात कराता है कि वेदांत, जीवन से पलायन की ओर नहीं बल्कि सामाजिक समरसता एवं आत्मबोध का सशक्त माध्यम है।[3]

स्वामी विवेकानंद के चिंतन का मूल आधार वेदांत दर्शन का गहन अवलोकन है, जो मानव को जीवन दर्शन, मोक्ष (मुक्ति) तथा सार्वभौमिक आध्यात्मिकता को प्रतिबिम्बित करता है। स्वामी जी उन महान चिंतकों में अपना स्थान रखते हैं जो विविध सन्दर्भों में न केवल वेदांत को पुनर्परिभाषित करते हैं बल्कि भारतीय दर्शन को भी सर्वोच्चता के शिखर पर स्थापित करते हैं। उन्होंने न केवल वेदांत को दर्शन से जोड़ा बल्कि चिंतन, मनन तथा मानव मूल्यों का प्रसाद समाज एवं राष्ट्र को प्रदान किया। उनका यह चिंतन जीवंतता के साथ–साथ व्यावहारिक तथा सार्वभौमिकता का प्रतीक होना भी दर्शाता है।

जब देश सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक संकट के दौर से गुजर रहा था तब भारतीय समाज आत्मग्लानि, जातिवाद, दासता, अंधविश्वास की परिधि में भटक रहा था तब युगांतकारी विवेकानंद जी ने यह सिद्ध किया कि इन सभी जटिलताओं का समाधान तो हमारे धर्म ग्रन्थों खासकर वेदांत में ही निहित है। स्वामी जी कहते हैं कि "वेदांत में ही भारत के जीवन का वास है, जो उनकी आत्मा का वास स्थान है"।[4]

स्वामी विवेकानंद जी का जीवन दर्शन एक सेतु की भांति था जहां पर आधुनिकता, सामाजिक चेतना, परंपरा तथा आध्यात्मिकता का समन्वय निश्चित रूप से होता है। चूंकि स्वामी जी की पारिवारिक पृष्ठभूमि निर्धन होने के उपरांत भी पूर्णतः सात्विक, आध्यात्मिक तथा संस्कारशील थी जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर भी पड़ा।

नरेंद्रनाथ दत्त बाल्यावस्था से ही असाधारण बौद्धिक क्षमता, कुशाग्र स्मरण–शक्ति तथा जिज्ञासु प्रवृत्ति सम्पन्न थे। इस अद्वितीय गुण के कारण ही नरेंद्रनाथ दत्त से स्वामी विवेकानंद बनने का सफर उन्होंने अपनी अद्वितीय अलौकिक तार्किक क्षमता से सहज ही तय कर लिया।

नरेंद्रनाथ दत्त ने अपने जीवन में न केवल दर्शन एवं वेदांत को ही स्थान दिया बल्कि तर्कशास्त्र, राजनीति शास्त्र, इतिहास तथा पश्चिमी दार्शनिक जैसे– कांट, स्पेंसर, हेगल तथा मिल को भी बड़ी गहनता से अवलोकन किया जिससे उनके मन में वैज्ञानिकता का भाव तथा मानव केंद्रित विचार प्रतिपादित होने लगे।[5]

तत्कालीन समय में स्वामी जी ब्रह्म समाज से भी जुड़े किंतु बौद्धिक जिज्ञासु प्रवृत्ति – (क्या ईश्वर का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से संभव है?) का हल न मिलने से उनका नया सफर रामकृष्ण परमहंस जी की ओर प्रारंभ हुआ। सन् 1881 में नरेंद्रनाथ दत्त जी का प्रथम साक्षात्कार रामकृष्ण परमहंस से हुआ तो उनका जीवन निर्णायक अवस्था में पहुंच गया क्योंकि जब नरेंद्रनाथ ने रामकृष्ण परमहंस से ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति होने के विषय में प्रश्न किया तो उनका उत्तर था कि जैसे मैं आपकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर रहा हूँ, उसी तरह मुझे ईश्वर की भी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। यही उनके जीवन का निर्णायक चरण था, जो उनके विचारों में जीवंतता प्रदान करने में सहायक हुआ साथ ही उनका जीवन दर्शन अनुमान एवं विश्वास पर नहीं अपितु प्रत्यक्ष अनुभूति होने में परिवर्तित हो गया।[6]

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जीवन तथा उनकी शिक्षाओं में भक्ति, उपनिषदिक वेदांत तथा तंत्र–प्रणाली का अद्भुत समन्वय था। गुरु के सानिध्य से नरेंद्रनाथ का

संशय युक्त अन्तःकरण अब प्रत्यक्ष अनुभूति में परिवर्तित होने लगा और यहीं से नरेंद्र नाथ जी का चिंतन अनुभवात्मक वेदांत की ओर प्रारंभ हुआ।[7]

सन् 1886 में रामकृष्ण परमहंस के महाप्रयाण उपरांत नरेंद्रनाथ ने संन्यास का पथ स्वीकार किया जिससे वे स्वामी विवेकानंद के नाम से प्रख्यात हुये। अब उनके मन में करूणा, सेवा एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के भाव प्रकट होने लगे। वे कहते हैं कि "दरिद्र नारायण की सेवा ही यथार्थ उपासना का विषय है"[8] ये शब्द उनके वेदांतीय जीवन का प्रारम्भिक सोपान थे।

यह पूर्ण यथार्थ है कि विवेकानंद जी का चिंतन किसी विशेष परंपरा, ग्रंथ या विचारधारा का परिणाम नहीं है बल्कि आध्यात्मिक स्रोतों तथा बहुस्तरीय बौद्धिकता के समन्वित रूप का प्रतिफल है। उनके चिंतन की विचारधारा का पोषण भारतीय परंपरा की जड़ों तथा पश्चिमी दर्शन से होता है। उनका वेदांत चिंतन तथा पश्चिमी दर्शन के सेतु का आधार मौलिक दार्शनिक विश्लेषण है, न कि धर्म ग्रन्थों की पुनरावृत्ति का परिणाम। इस दृष्टिकोण से हम स्वामी जी के चिंतन को संवादात्मक दर्शन कह सकते हैं।[9] विवेकानंद जी का चिंतन केवल आध्यात्मिकता या दार्शनिक परिवेश तक सीमित नहीं है बल्कि यह तो वैश्विक मानवता तथा नवराष्ट्र निर्माण से युक्त है, जो मानवता को एक सूत्र से जोड़ने का कार्य करती है। इस आधार पर हम व्यक्त कर सकते हैं कि स्वामी जी का वेदांतीय दर्शन पलायनवादी नहीं है।

स्वामी जी का राष्ट्रबोध किसी भौगोलिक परिधि की अपेक्षा नहीं करता बल्कि यह तो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक बोध के परस्पर आदान–प्रदान का सशक्त माध्यम है, जो नागरिकों के चरित्र–चिंतन तथा आत्मविश्वास से आती है, न कि सैन्य शक्तियों अथवा आर्थिक संसाधनों से। इस दृष्टिकोण में राष्ट्र निर्माण को पुनर्जीवित करने की यथाशक्ति उनके विचारों में निहित है।[10] स्वामी जी के संपूर्ण दार्शनिक चिंतन को निःसंदेह वेदांत में ही बांधा जा सकता है। उनका वेदांत सक्रिय सामाजिकता युक्त मानवोन्मुखी भावनाओं का परिष्कृत रूपांतरण है, न कि शंकराचार्य की कृति की पुनरावृत्ति।[11] विवेकानंद ने वेदांत को दर्शन की परिधि से निकालकर मानव जीवन की व्यावहारिक जटिलताओं से मुक्त करने का असाधारण प्रयास किया है, जिसकी प्रेरणा स्वामी जी को निम्न स्रोतों से मिलती है :–

1. उपनिषदिक परंपरा
2. अद्वैत वेदांत
3. परमहंस की आनुभूतिक आध्यात्मिकता

उक्त स्रोतों के आधार पर स्वामी जी ने अपने वेदांत को अनुभव प्रधान तथा समन्वयात्मक बनाया है, क्योंकि यह मानव जीवन की जटिलताओं जैसे – अशिक्षा, निर्धनता, धार्मिक संकीर्णता तथा सामाजिक विषमता का समाधान कैसे संभव होगा? इसी कारण उन्होंने अपने वेदांतीय चिन्तन में सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक अनुप्रयोगों को समाहित किया गया है। उनका स्पष्ट कथन था ''यदि वेदांत मानवीय समस्याओं को हल नहीं कर सकता तो वह बौद्धिक विलास की विषयवस्तु निमित्त मात्र है''।[12]

उक्त कथनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि स्वामी जी का चिंतन समन्वयात्मक प्रकृति का है जिसमें उपनिषद, गीता, भारतीय एवं पश्चिमी दर्शन, भक्ति तथा सामाजिक अनुभव का समिश्रण है। इस कारण उनका यह समन्वय उनको न तो परंपरावादी बनाता है और न ही अंधानुकरण करने वाला। स्वामी जी के चिंतन में उपनिषद से ब्रह्म की सर्वव्यापकता, अद्वैत वेदांत से समानता, गीता से कर्म योग सिध्दांत, परमहंस से अनुभववाद, भक्ति में करुणा तथा पश्चिमी दर्शन से तर्क एवं भाव विवेकानन्दीय वेदांत के सृजन का मूलाधार है, जो उनको गहन मीमांसा उपरांत प्राप्त हुए हैं।

वेदांत की संकल्पना – वेदांत शब्द का सृजन दो शब्दों के मेल की व्युत्पत्ति है। वेद़+अंत तात्पर्य वेदों का अंत, निष्कर्ष या अंतिम भाग। यहां स्पष्ट करना उचित होगा कि वेदों के अंतिम भाग को उपनिषद या वेदांत नाम से भी जाना जाता है। चूंकि वेदों के अंतिम भाग में ही परम तत्व एवं परम सत तथा समस्त वैदिक चिंतन का सार संग्रहित है और उनका विवेचन भी है इसलिए यह वेदांत नाम से प्रख्यात हुये हैं।[13]

वेदांत की पृष्ठभूमि भारतीय दर्शन की उस परंपरा का नेतृत्व करती है, जो अनुभव को अंतिम प्रमाण के रूप में स्वीकार करती है। इस प्रयोजन से उपनिषदों में वर्णित महावाक्य (''तत्वमसि'', ''अहं ब्रह्मास्मि'', ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'')[14] वेदांत के आधारभूत मौलिक वाक्य हैं, जो आत्मा और ब्रह्म को केंद्रीय विषय बनाने में सहायक हैं। ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता ही वेदांत का प्रमुख आधार है। उपनिषदिक वेदांत में ज्ञान द्वारा युक्ति पर विशेष बल दिया गया है, यहाँ पर ज्ञान से तात्पर्य आत्म–साक्षात्कार से है, जो शास्त्री वेदांत का आधार बनते हैं। विवेकानंद के वेदांतीय चिंतन में निम्न तथ्यों को समझे बगैर उनके सम्पूर्ण चिन्तन पर विमर्श करना अति जटिल होगा।

1. ब्रह्म ही सर्वोच्च सत्ता एवं अंतिम सत्य है।
2. आत्मा के अति पवित्र होने से प्रत्येक जीव अपने आप मे दिव्य एवं अनुपम है।
3. अविद्या ही बंधन (अज्ञानता) का कारक और कारण है।
4. मुक्ति से तात्पर्य जीवन के अंतिम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना है।
5. सर्वधर्म समभाव दर्शाता है कि सत्य प्राप्ति के अनेकों मार्ग संभव है।
6. मानवता विविध धर्मों में व्याप्त संक्रमणता से मुक्त है।
7. सामाजिक सेवा भाव तीर्थ तुल्य हैं।
8. अनुभवात्मक ज्ञान को सर्वोच्च प्राथमिकता।
9. राष्ट्रीय चेतना का जागरण।
10. नारी शिक्षा।

वेदांत चिंतन के विविध कारक :

1. उपनिषदिक वेदांत

स्वामी विवेकानंद जी का चिंतन मूलरूप से उपनिषदिक वेदांत की गहन मीमांसा पर आधारित है, जो आत्मा की पवित्रता, ब्रह्म की सर्वव्यापकता, ज्ञान (आत्म–साक्षात्कार) से मुक्ति जैसे मूल तत्वों को आत्मसात करती है। इसीलिए स्वामी जी उपनिषदों को सिर्फ दार्शनिक ग्रंथ के रूप में नहीं बल्कि मानव चेतना के श्रेष्ठ अनुभव की अभिव्यक्ति मानते हैं। उनका मत है कि ''जहां आत्मा की पवित्रता स्वीकार होगी तो सामाजिक समानता और नैतिक मूल्य ही मानवीय आधार बन जाएंगे''। तब अनुष्ठान तथा आहुतियों के स्थान पर आत्मानुभूति, ध्यान तथा विवेक को समुचित स्थान दिए जाने लगेगा।[15]

2. अद्वैत वेदांत

शंकराचार्य कृत अद्वैत वेदांत स्वामी जी के चिंतन का दार्शनिक केंद्र बिंदु है। उन्होंने शंकराचार्य को भारतीय विचार प्रणाली का श्रेष्ठ मस्तिष्क माना है। शंकराचार्य के अनुसार – ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः[16] आदि महावाक्य ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या बोलते हैं तथा अविद्या को बन्धन का मूल कारण भी मानते हैं क्योंकि अविद्या के कारण ही आत्मा, शरीर को अभिन्न मान लेती है जबकि आत्मा तो अपने आप में शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। अविद्या का नाश होने पर इस भ्रांति का भी नाश हो जाता है और आत्मा अपने मूल स्वरुप को पहचान लेती है। अद्वैत वेदांत में वर्णित ''ब्रह्म और आत्मा'' के ऐक्य सिद्धांत को स्वामी जी ने मात्र आध्यात्मिक मुक्ति के मार्ग रूप में स्वीकार नहीं किया है, बल्कि इस सिद्धांत को सामाजिक एकता का आधार भी

बनाया है। यहां यह कहना सर्वथा उचित होगा कि स्वामी जी ने शंकर के दर्शन को मूलतः स्वीकार नहीं किया है बल्कि उन्होंने अद्वैत वेदांत की हर उस व्याख्या से विरक्ति की है जो मानव को जीवन और समाज से विमुख करने के उद्देश्य से बोली गई है। विवेकानन्द जी अद्वैत को शाश्वत सत्य मानते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक जीव के लिए ब्रह्म दर्शन अनिवार्य है। यही दर्शन, करुणा, सेवा और नैतिकता का आधार स्तंभ है। इस तरह स्वामी जी ने अद्वैत वेदांत को सक्रिय रूप से व्यावहारिक दर्शन में परिवर्तित कर दिया है। जो धार्मिक सहिष्णुता और वैश्विक संवाद का प्रमुख साधन भी है, जिससे संकीर्ण मानवतावाद को वैश्विक मानवतावाद के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

3. मध्यकालीन युग से आधुनिक युग का वेदांत –

इस काल में वेदांतीय परंपरा मूलतः मठों तथा संन्यास व्यवस्था तक सीमित थी। जबकि आधुनिक युग में विशेषकर बंगाल पुनर्जागरण के समय वेदांत ने अपने स्वरूप को और भी ज्यादा विस्तारित किया, जो सामाजिक चेतना से जुड़ने लगा। इस क्रम में राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, रविंद्र नाथ टैगोर तथा केशवचन्द्र सेन जैसे चिंतकों ने एकेश्वरवाद को सामाजिक सुधार से जोड़ा। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए रामकृष्ण परमहंस तथा उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद जी ने ज्ञान और कौशल के द्वारा अनुभव प्रधानता को भौतिकवाद तथा तार्किकता को वैश्विक स्तर तक ले गए, जो समाज और राष्ट्र के लिए नूतन आयाम गढ़ने वाले कारक थे।[17]

4. गीता में कर्म योग

विवेकानंद के चिंतन की आधारशिला जितनी वेदांत पर आधारित है उतना ही अंश श्रीमद्भागवत गीता का भी है। गीता में कर्म योग, ज्ञान योग और भक्ति योग का अद्वितीय समन्वय स्वामी जी के व्यावहारिक वेदांत को और भी ज्यादा पुष्ट करता है, विशेषकर कर्म योग को। स्वामी जी स्पष्ट कहते हैं कि कर्म योग केवल कर्म सिद्धांत नहीं, प्रत्युत निष्काम कर्म के माध्यम से आत्म–शुद्धि का भी मार्ग है। इसी कारण वे गीता को सामाजिक कर्म का ग्रन्थ मानते हैं जिसे वे जीवन की जीवंत समस्याओं से जोड़ते हैं।[18] स्वामी जी ने आध्यात्मिक साधना को समाज सेवा के समतुल्य माना है क्योंकि जो समाज के लिए जीवंत है वह अपने आप को विस्तारित करता है जिससे वह अद्वैत अनुभव को प्रत्यक्ष करने का अधिकारी हो जाता है।

5. रामकृष्ण परमहंस की अनुभवात्मकता

स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व को सर्वाधिक स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी के अनुभवात्मक ज्ञान ने गहराई से प्रभावित किया है। परमहंस जी का विचार था कि विविध धर्मों के विविध मार्गों का गंतव्य सत्य की ओर जाता है। इसी सिद्धांत को विवेकानंद जी ने आधार बनाकर सर्वधर्म समभाव को स्वीकार किया है। विवेकानंद जी को परमहंस जी के यह विचार इतने उत्कृष्ट लगे कि उन्होंने उनको जीवंत प्रत्यक्ष स्त्रोत के रूप में स्वीकार कर लिया, जो विवेकानंद के विचारों को दार्शनिक आधार देते हैं साथ ही अनुभवात्मिकता उनके दर्शन को और भी ज्यादा पुष्ट करती है।[19]

6. भक्ति परंपरा का समन्वय

भक्ति परंपरा ने भी स्वामी जी के चिंतन में बहुत बड़ा योगदान दिया, जिससे उनके विचारों में भावनात्मक दृष्टि से मानवीय आधार का समागम हुआ। उन्होंने भक्ति मार्ग को ही अपना कर्मपथ बनाया। क्योंकि उनका मत है कि "भक्ति ही मन को पवित्र और पापहीन बनाती है"। यही मानसिकता उनके चिंतन को सर्वोच्चता के शिखर पर स्थापित करती है। भक्ति मार्ग में उनके प्रेरणापुंज तुलसीदास जी, मीराबाई, रसखान, रैदास, कबीर तथा सूरदास जी आदि थे। जिनके भजनामृतों ने उनके हृदय

को पावन बनाया और मानवता को सहृदय स्वीकार किया।[20]

7. आत्मा की पवित्रता एवं जगत की मिथ्यता

विवेकानंद जी का परिष्कृत अद्वैत वेदांत चिंतन की परिधि आत्मा की जन्मजात पवित्रता से सापेक्ष जुड़ा हुआ है मनुष्य की मूल प्रवृत्ति पापमय न होकर पवित्र है। पाप एवं अविद्या निश्चित रूप से आत्मा के स्वरूप नहीं हैं, यह तो माया का भ्रम आवरण मात्र है। जो अज्ञानतावश पाप करने के लिए प्रेरित करता है। स्वामीजी के यही विचार आगे चलकर सामाजिक दृष्टि से क्रांतिकारी साबित हुए। क्योंकि उनका मानना था कि जब प्रत्येक मनुष्य में एक ही ब्रह्म का वास है तो वर्ग, जाति, लिंग के आधार पर असमानता का भाव क्यों? यह असमानता का भाव अद्वैतवाद के नैतिक सिद्धांत के विपरीत है। यही क्रांतिकारी विचार विवेकानंदीय चिंतन को मानवाधिकार और सामाजिक समानता का दार्शनिक आधार बनाने में अतुलनीय भूमिका का निर्वहन करते हैं।

अद्वैत दर्शन में जगत को स्पष्टतः मिथ्या भाषित किया गया है, विवेकानंद जी इस भ्रांति को दूर करने हेतु कहते हैं, कि मिथ्या शब्द को जगत की निरर्थकता से मूल्यांकित नहीं करना चाहिए बल्कि यह तो जगत की सापेक्ष यथार्थता का चित्रण है। यह जगत साक्षात कर्म साधना भूमि है, यहां आत्मा अपने पवित्रतम स्वरूप के माध्यम से कर्म, सेवा और करुणा को अभिव्यक्त करती है, जो अहंकार से मुक्त अन्नत आनंदमय की अनुभूति की निधि है।[21]

8. व्यावहारिक वेदांत में शिक्षा, मानवता तथा जाति–प्रथा

विवेकानंद जी के व्यावहारिक चिंतन में शिक्षा, मानवता तथा जाति प्रथा ऐसे आधार स्तंभ हैं, जिनके आधार पर स्वामी जी ने अपने व्यावहारिक वेदांत को सार्थक बनाया है। उनका मानना है कि देश के प्रत्येक वर्ग का नागरिक अगर प्रबुद्ध होगा तो मनुष्य में अंतर्निहित पवित्रता का प्रकाट्य स्वतः ही हो जाएगा। जिससे मानवीय स्वभाव में दया, करुणा का भाव भी स्वतः जागृत हो जाएगा जो मानवता एवं एकता का परिचायक होगा तथा अखिल विश्व को बन्धुत्व दृष्टि प्रदान करेगा। जहां एक ओर स्वामी जी शिक्षा के लिए पुरजोर समर्थन करते हैं, तो दूसरी ओर जाति प्रथा की तीव्र भर्त्सना भी करते हैं। उनका मत है यदि अद्वैतवाद सिद्धांत सत्य है, तो जन्म के आधार पर भेदभाव निश्चित रूप से औचित्यहीन होगा। इससे असमानता एवं अन्याय को प्रोत्साहन मिलेगा, जो स्वामी जी की वेदना का कारण था।[22]

मानवतावाद स्वामी जी के व्यावहारिक चिंतन को गहराई से जोड़ता है। जिस मानवतावाद की हम चर्चा कर रहे हैं वह सिर्फ मानवतावाद न होकर आध्यात्मिक मानवतावाद है, जो मानव की गरिमा तथा उसकी पवित्रता को मूल आधार देती है। आध्यात्मिक मानवतावाद को स्वामी जी ने इतना उत्कृष्ट माना है कि पश्चिमी धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद से भिन्नता होने पर भी वह परस्पर संवाद स्थापित करती है तथा मानवतावाद को नव–गति तथा नव–लय प्रदान करता है। यहां पर स्पष्ट करना ज्यादा उचित होगा कि विवेकानंद अद्वैत वेदांत का खंडन नहीं करते अपितु उसके स्वरूप को और अधिक विस्तारित करते हैं, जिससे व्यावहारिक वेदांत, दर्शन में नूतन आयामों को प्रस्थापित करता है, जो समाज को नवीन सामाजिक प्रासंगिकता प्रदान कर सहज और सरल बनाता है।

विवेकानंदीय चिंतन में "दरिद्र नारायण" की व्याख्या अद्वैतवाद की सामाजिक व्याख्याय के रूप में श्रेष्ठतम उदाहरण पेश करती है "जो नर सेवा को नारायण सेवा" के समतुल्य होना दर्शाती है। निर्धनता, अशिक्षा, शोषण तथा मानवीय नैतिक मूल्यों की अवमानना जैसी जटिल समस्याऐं समाज में बहुदा रूप से विद्यमान हैं, जो कहीं–न–कहीं और किसी–न–किसी रूप में मानवता को

शर्मसार करती हैं। इसी प्रयोजन से स्वामी जी ने मानव में ईश्वर के दर्शन को सच्चा अद्वैत कहा है, जो करुणा, सेवा, मानवीय नैतिक मूल्यों एवं सामाजिकता का सक्रिय नैतिक दर्शन बन जाता है। क्योंकि उनका मत है कि "जो वेदांत निर्धनों, निःशक्तों के योग्य न हो, वह सर्वथा वेदांत हो ही नहीं सकता।"[23]

9. विवेकानंद जी चिंतन में धर्म

स्वामी विवेकानंद जी ने धर्म को कर्मकांड से मुक्त रखा है उनका मत है कि "धर्म विचार पर आधारित न होकर अनुभव पर आश्रित है, जो कि पूर्णतः वेदांतीय है"। धर्म का प्रधान उद्देश्य ईश्वर को स्वीकारना नहीं है, अपितु ईश्वर का अनुभव करना सिखाता है। यह उपनिषदिक अपरोक्ष अनुभूति का आधुनिकतम स्वरूप है। विवेकानन्दीय चिंतन में धर्म सहिष्णुता की नहीं अपितु धार्मिक स्वीकृति की बात स्वीकार योग्य है।

"एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति"[24] अर्थात सत्य (परम तत्व) एक मात्र है, जिसे विभिन्न ज्ञानीजन अनेकों रूप में दर्शाते हैं। इस महावाक्य के द्वारा स्पष्ट होता है कि विविध धर्मों के पथ कितने ही भिन्न हो किंतु उन सबका गंतव्य एकमात्र परम् सत स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करना है, जो विवेकानंद के चिंतन को और ज्यादा उत्कृष्ट बनाता है। यहाँ न तो पारमार्थिक ईश्वर के विषय में चर्चा की गई है और न ही व्यावहारिक ईश्वर के विषय की बल्कि परम सत स्वरूप ब्रह्म जो एक मात्र सत्ताधिकारी के स्वरूप की चर्चा की गई है।

10. विवेकानंदीय चिंतन में सामाजिक असमानताओं का विरोध

स्वामी जी ने धर्म से ज्यादा मानवीय मूल्यों को शीर्षस्थ रखा है, जो सामाजिक एकता को स्थापित करने में पूरक सिद्ध होते हैं। समाज में व्याप्त असमानता के प्रति स्वामी जी सदैव से ही विरोधी रहे हैं। उनका कहना है कि "वेदांत की शिक्षा आत्मा में एकरूपता को होना दर्शाती है"[25] – अस्पृश्यता शब्द जैसी कोई भी वस्तु वेदांत का हिस्सा नहीं है। परंपरागत धार्मिक चेतना के स्वरूप में ईश्वर की अभिव्यक्ति को देवालयों, मठों तथा पाषाण कृतियों में खोजा जा रहा है जबकि स्वामी जी ने ईश्वर का वास तो निर्धनों, निःशक्तों, भूखों तथा शोषितों की सेवा करने में देखा है। यह दृष्टिकोण स्वामी जी को सामाजिक चिंतन से सापेक्षता प्रदान कराता है, जब मानवीय सेवा भाव ईश्वरीय आराधना के रूप में परिवर्तित होने लगते है, तब परिवर्तनशीलता की यह अभिव्यक्ति सामाजिक करुणा तथा सक्रिय नैतिकता का दर्शन बन जाती है।

वेदांत दर्शन आत्मा को लिंगातीत भाव से स्वीकारता है। क्योंकि आत्मा का मूल स्वरूप लिंग (स्त्री–पुरुष) भाव से मुक्त है। नारी के प्रति सामाजिक विषमताओं का भाव रखना ईश्वर से विरक्त होने जैसा है जो स्वामी जी को पूर्णतः अस्वीकार है। नारी की अभिव्यक्ति समाज की पूर्णता को प्रदर्शित करती है, जो परिवार तथा समाज को सामाजिक बनाती है।[26]

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र स्वामी विवेकानंद जी के वेदांतीय चिंतन में विविधताओं का समन्वयः एक विश्लेषणात्मक दार्शनिक अवलोकन द्वारा स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की मीमांसा करना है, विशेषकर उनके व्यावहारिक वेदांतीय पक्षों की जो उनको मानव से महामानव बनाने में सहायक सिद्ध हुये हैं।

विवेकानंद के राष्ट्रवाद में आध्यात्मिकता का पूर्ण प्रसाद विद्यमान है क्योंकि उन्होंने राष्ट्रीय चेतना का स्रोत वेदांत में ही पाया है, जो उनके आत्मबोध तथा राष्ट्रीय पुनर्जागरण का आधार स्तंभ है। राष्ट्र के प्रति निःस्वार्थ भाव से सेवा करना आत्म–विस्तार का ही रूप है। प्रत्येक जीव के आत्म–स्वरूप में ब्रह्म की उपस्थिति समानता का परिचायक है जिसमे अहिंसा, असमानता, शोषण तथा

राग–द्वेष का कोई स्थान नहीं है यह विचार उनके चिंतन को नैतिकता, सामाजिकता, समानता तथा राष्ट्रवाद के प्रति अनुराग पैदा करने वाला बनाता है। रामकृष्ण मिशन का आदर्श महावाक्य – ''आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'' स्वामी जी के चिंतन को द्वैतहीन स्वरूप में दर्शाता है। क्योंकि स्वयं के लिए मोक्ष तथा विश्व के लिए कल्याण की भावना को द्वैत रूप में नहीं अपितु पूरक रूप में स्वीकार की है।

विवेकानंद जी की सार्वभौमिकता का भाव उनके कथन ''हम समस्त धर्मों की यथार्थता को स्वीकार करते हैं'' कहीं–न–कहीं सामाजिक, राष्ट्रीय तथा वैश्विक मानवता का अनुसरण करना सिखाता है। क्योंकि स्वामी जी ''धर्म का वास पुस्तकों की अपेक्षा, आत्मा के बोध मे होना स्वीकारते हैं'' उनका यह भाव उनको अनुभव प्रधान बनाता है, जो उनके दर्शन की अभिव्यक्ति को सबल करता है। साथ ही मानवता के प्रति अनुराग का भाव नैतिक आदेश के स्थान पर आध्यात्मिक अनिवार्यता के सांचे में ढल जाता है, जो मानव कल्याण का एक मात्र साधन है। मानवता के प्रति अनुराग उनके चिंतन को राष्ट्रवाद के प्रति संकीर्ण नहीं अपितु समावेशी बनाता है। उन्होंने वेदांत को व्यावहारिक, मानव केंद्रित तथा अनुभावात्मक स्वरूप में ही स्वीकार किया है जिसे न केवल दार्शनिकों तथा सन्यासियों तक सीमित रखा बल्कि प्रत्येक जनसाधारण के जीवन से प्रत्यक्ष जोड़ा। उनका कथन है कि ''वेदांत किसी पुस्तक में नहीं बल्कि मानव हृदय में वास करता है''। क्योंकि ब्रह्म कोई मिथ्या या कल्पना का विषय नहीं यह तो परम सत की साक्षात अनुभूति है, जो अनुभव सापेक्ष है।

स्वामी जी ने मोक्ष को (अद्वैतानुसार) संसार से निवृत्ति रुप में कदापि स्वीकार नहीं किया है अपितु बंधनों से युक्त स्वच्छंदता को ही मोक्ष कहा है जो दूरगामी न होकर तत्समय, तत्क्षण संभव है। अतः हम कह सकते हैं कि स्वामी जी ने मोक्ष को जीवन पोषक माना है न कि जीवन विरोधी। स्वामी जी अपने व्यावहारिक वेदांत में स्पष्ट कहते हैं यदि तुम्हारी आस्था अद्वैत में है, तो भूखे को भोजन करना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है, क्योंकि व्यावहारिक वेदांत आचरण का विषय है, न की दार्शनिक। यह ज्ञान ही मानव सेवा में परिणित हो जाता है, जो मानवता को यथार्थ रूप से पोषित करता है।

स्वामी जी की सामाजिक असमानताओं के प्रति अभिव्यक्ति उनको वेदांतीय बनाती है, उन्होंने स्पष्ट कहा है यदि आपका संबोधन किसी को अछूत कहना है, तो आप निश्चित रूप से वेदांत विरोधी हैं क्योंकि आत्मा से न तो कोई उच्च है न अधम, न कोई अछूत है और न कोई जन्म से श्रेष्ठ। जाति या वर्ग कोई आध्यात्मिक संस्था न होकर विक्षिप्त सामाजिक जड़ता का परिणाम है।

नारी पतन का मूल कारण अशिक्षा, शोषण एवं सामाजिक कुरीतियां हैं। जिस समाज या राष्ट्र की स्त्रियां अशिक्षित एवं शोषित हैं, वह समाज या राष्ट्र उन्नति के विषय में कल्पना न करे। नारी के उत्थान से ही सामाजिक सुधार, नैतिक उन्नयन तथा राष्ट्र निर्माण संभव है और यही मानवता जाग्रत करने की कुंजी भी है।

वर्तमान वैश्विक परिवेश में विवेकानंद जी का वेदांतीय चिंतन एक बहुआयामी वैकल्पिक दृष्टि प्रदान करने वाला है, जो न तो किसी धर्म विशेष के प्रति अनुरागी बनाता है और न ही किसी विशेष सांस्कृतिक वर्चस्व को स्थापित करने वाला।

''यह राष्ट्र (भारत) मानवता को ही अपना आदर्श स्वीकार कर ले, तो निश्चित ही यह वैश्विक मानवता का भी प्रतिनिधि बन सकता है'' – स्वामी विवेकानंद जी

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

[1] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–1). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 02–05।

[2] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–3).

कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 238–240।

[3] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–2). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 14–17।

[4] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–1). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 01–04।

[5]रोलां, रोमान. (2008). स्वामी विवेकानंद. नई दिल्लीः राजपाल एंड सन्स, पृ. 18–24।

[6]विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–1). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 135–140।

[7] शारदानंद, स्वामी. (2010). श्रीरामकृष्णः लीलाप्रसंग. कोलकाताः उद्बोधन कार्यालय, पृ. 511–515।

[8]विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–5). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 56–57।

[9] दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ. (2011). आधुनिक भारतीय दर्शन. नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 108–114।

[10]शर्मा, चंद्रधर. (2010). आधुनिक भारतीय दर्शन. नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 240–246।

[11]दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ. (2011). आधुनिक भारतीय दर्शन. नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 130–135।

[12] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–5). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 87–89।

[13] शंकराचार्य. (2010). ब्रह्मसूत्र भाष्य (अनु. स्वामी गम्भीरानन्द). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 1–6।

[14] उपनिषद्. (2010). छान्दोग्य उपनिषद् (6.8.7) (अनु. स्वामी गम्भीरानन्द). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 428–429।
उपनिषद्. (2010). बृहदारण्यक उपनिषद् (1.4.10) (अनु. स्वामी गम्भीरानन्द). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 199–200।
उपनिषद्. (2010). छान्दोग्य उपनिषद् (3.14.1) (अनु. स्वामी गम्भीरानन्द). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 266–267।

[15] शंकराचार्य. (2010). ब्रह्मसूत्र भाष्य (अनु. स्वामी गम्भीरानन्द). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 5–11।

[16] राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (2011). भारतीय दर्शन (खंड–1). नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 151–154।

[17]भट्टाचार्य, शिवनाथ. (2009). ब्राह्मो समाज और भारतीय पुनर्जागरण. कोलकाताः के.पी. बागची एंड कंपनी, पृ. 41–47।

[18] शर्मा, चंद्रधर. (2010). आधुनिक भारतीय दर्शन. नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 260–265।

[19]विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–1). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 142 –147।

[20]विवेकानंद, स्वामी. (2013). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–2). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 187–189।

[21] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–1). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 53–61।

[22] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–5)।. भारत और उसकी समस्याएँ). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 15–22।

[23] दास, निखिलानन्द. (2007). स्वामी विवेकानंदः एक समग्र अध्ययन. कोलकाताः रामकृष्ण मठ, पृ. 187–193।

[24] राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (2009). भारतीय दर्शन (खंड–1). नई दिल्लीः राजपाल एंड सन्स, पृ. 93–95।

[25] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–5: भारत और उसकी समस्याएँ). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 139–144।

[26] विवेकानंद, स्वामी. (2012). स्वामी विवेकानंद संपूर्ण वाङ्मय (खंड–2). कोलकाताः अद्वैत आश्रम, पृ. 299–301